Research Inspiration
An International Multidisciplinary e-Journal
(Peer - reviewed, Open Accessed & Indexed)
Web: www.researchinspiration.com; Email: publish1257@gmail.com
Vol.4, Issue-IV, September 2019
ISSN: 2455-443X
Impact Factor: 6.331 (SJIF)
e-ISJN: A4372-3069

वैदिक साहित्य के परिपेक्ष्य में धर्म का स्वरूप

डॉ. आशीष कुमार
गुरू कॉगड़ी विश्व विद्यालय, हरिद्वार

सारांश

धर्म बुद्धि अर्थात् विद्या और ज्ञान का विषय है, इसलिए, आर्य सभ्यता के चारों महान् स्तम्भें में इसको प्रथम स्थान दिया जाता है। जिस प्रकार मोझ मर्यादित अर्थ के अधीन है और 'मर्यादित अर्थ' काम के अधीन है। उसी तरह काम को मर्यादित करके उसको मोक्ष के अनुकूल बनाना धर्म के अधीन है, अर्थात् धम्र से मर्यादित अर्थ एवं काम सही मोक्ष के साधक होते है। धर्मानुसार जीवन बनाने से ही मनुष्य को इहलौकिक एवं परलौकिक दोनो सुख प्राप्त होते है।

शब्द कुंजी– मर्यादित अर्थ, मोक्ष, इहलौकिक एवं परलौकिक, वेद, धर्म, आचरण।

'धर्म' शब्द 'धृ धारणपोषणयोः' धातु से 'मनिन्' प्रत्यय करने पर निष्पक्ष होता है। जिसका व्युत्पत्तिपरक अर्थ होगा– ''ध्रियते लोकाडनेन, धरति लोकं वा धर्मः'' 1. कर्त्तव्य, जाति, सम्प्रदाय आदि के प्रचलित आचार का पालन, 2. कानून, प्रचलन, दसतूर, प्रथा, अध्यादेश, अनुविधि 3. धार्मिक या नैतिक गुण, भलाई, नेकी, अच्छे काम 4. कर्त्तव्यशास्त्र विहित आचरण 5. अधिकार, न्याय, औचित्य या न्यायसाम्य, निष्पक्षता 6. पवित्रता, शालीनता आदि''[1] धर्म कहलाता है।

वैदिक संस्कृत साहित्य में धर्म के अनेक विस्तृत अर्थ व परिभाषाएँ दी गई है। जैसा कि महर्षि पतंजलि मुनि ने धर्म को परिभाषित करते हुए कहा है– ''योग्यतावच्छिन्ना धर्मिण– शक्तिरेव धर्मः''[2] धर्मी (जिसका धर्म हो या पदार्थ) की योग्यतायुक्त शक्ति को ही धर्म कहा जाता है। जैसे आग का धर्म जलाना है यदि अग्नि का यह गुण नष्अ हो जाये तो वह राख कहलाती है। उसमें आग का धम्र जलाना प्रकाश देना आदि नहीं होता। पानी का धर्म शीतलता है। अतः सरसता, तरलता पिपासा, शनित आदि स्वाभाविक गुण जल में सदैव विद्यमान रहते है। कहा भी है– ''धारणात् धर्ममित्याहुः धर्मेण विधृतःप्रजाःयत् स्याद् धारणसंयुक्तं सधर्म इति निश्चयः।।''[3] धारण करने से इसका नाम धर्म पड़ा। धर्म प्रजा को धारण करता है जिससे धारण होता है। वह निश्चय करके धर्म है।

(क) वेद की दृष्टि में धर्म के मूलतत्व– धर्म का मानव जीवन मं महत्वपूर्ण स्थान है। इसलिए संस्कृत में नीतिकारों का कहना है कि– 'धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः'[4] धर्म से हीन मनुष्य पशु के समान है। ''ध्रियतेडसौ धर्मः'' जो धारण

[1] संस्कृत हिन्दी कोश पृ.स. 489।
[2] महर्षि पंतजलि, योगदर्शन–3.14, व्यासभाष्य, पृष्ठ 239
[3] महाभार कर्णपर्व 69.58
[4] हितोपदेश 25

किया जाये वही धर्म है। ''धार्यतेडसौ धर्मः'' गुरू–शिष्य परम्परा से जो धारण किया गया है वह धर्म कहलाता है। ''विहित कर्मजन्यो धर्मः'' वेदविहित कर्म से जिनका जन्म है वह धर्म कहलाता है।''[5]

वेद धर्म नहीं है। वेद तो सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद में धर्म नहीं है, सत्य है। वेद का पढ़ना–पढ़ाना धर्म नहीं है, तदनुसार आचरण करना धर्म कहलाता है। इसलिए महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज के नियम एवं उदेश्य निर्धारित करते हुए कहा है–1 'सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते है उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।[6] 2. 'वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना–पढ़ाना और सुनान–सुनाना सब आर्यो का परम धर्म है।[7]

मनुष्य का धर्म वेद है न जंदोवेस्ता, न उपनिषद् है, न गीता, न धम्मपद, न कुरान, न बाइबिल कोई भी पुस्तक मनुष्य का धर्म नहीं हो सकती है। पुस्तक केवल सत्य विद्याओं की पुस्तक हो सकती है। अत एव वेद मे धर्म नहीं है, सत्य है। इसीलिए महर्षि दयानन्द लिखते है– ''सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य का विचार करके करने चाहिए।''[8] सत्य जब तक पढ़ने–पढाने और सुनने–सुनाने का विषय रहता है, तब तक वह सत्य है। जब वह आचरण में लाया जाता है त बवह धर्म बन जाता है। तभी तो वैदिक साहित्य में पदे–पदे कहा गया है– :सत्यं वद। धर्म चर'[9] सत्य बोलो और धर्म का आचरण करो। पठित और वदित सत्य जब आचरण में उतर जाता है, तब वह धर्म कहलाता है। वदित सत्य जब जीवन में धारित होता है तब वह धर्म का रूप ले लेता है, अर्थात् धरित सत्य ही धर्म है। अधारित सत्य अधर्म है।

अब प्रश्न उठता है कि सत्याचरण और ज्ञानाचार मनुष्य का धर्म है? इसका समाधान होगा– मनुष्य का धर्म है मनुष्यता, विशुद्ध मानवता। सत्याचरण और ज्ञानाचार तो मानव–धर्म का एक अंग है। पूर्ण मानवता ही मानव का सच्चा धर्म है। चारों संहिताओं एवं वेदत्रयी में मनुष्य को पूर्ण मनुष्य बनाने का विधि–विधान वर्णित है। जैसा कि ऋग्वेद में कहा गया है– ''मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्।''[10] मानव बन और दिव्य सन्तानों को जन्म दे। दिव्य जनत्व मानवत्व का प्रकाश कर।

वेद का सन्देश है कि जिस प्रकार पुष्प की आकृति से युक्त होते हुए भी यदि पुष्प में सुगन्धि नहीं है तो उस पुष्प का कोई मूल्य नहीं होता, उसी प्रकार मनुष्य की आकृति से युक्त होकर यदि मनुष्य में मानवता नहीं है तो वह किसी काम का नहीं है। वेद के अनुसार यदि हमारे अन्दर मानवता नहीं है यदि हमारे अन्दर दिव्य जनत्व का गुण नहीं है, यदि हमने मानव जीवन में मानवता की स्थापना नही की है, यदि हमने मानव–मन्दिर में दिव्य जनतव दीप प्रज्वलित नहीं किया है, यदि हमने मानव देव मे मानवता की ज्योति जगाकर दिव्य जनत्व का प्रकाशन नहीं किया है तो वेद की दृष्टि में हम अर्धमात्या है। हमारे जीवन का कोई मूल्य नहीं है।

---

[5] श्री जगदीश प्रसाद गोयल, शान्ति की ओर, पृष्ठ 36
[6] आर्य समाज के नियम–1
[7] आर्य समाज के नियम–3
[8] आर्य समाज के नियम–5
[9] तैत्तिरीयोपनिषद– शिक्षावल्ली, अनुवाक–11, मन्त्र–1
[10] ऋग्वेद– 10.53.6

सार्वभौम मानवता की भावना ही मानवधर्म का मूल सिद्धान्त है। अखिल भूमण्डल पर निवास करने वाले समस्त मानव एक विश्व परिवार के प्रिय सदस्य है। यह मानवीय भावना मानव धर्म का मूल सिंचन करने वाली हैं इसलिए वेदानुयायी कहता है–

नकिर्देवा मिनीमसि नकिरायेपयामसि।
मन्त्र श्रुत्यं चरामसि पक्षेभिरपिकक्षेभिरत्राभि संरभामहे।।[11]

हे विद्वानो न तो हम प्राणहिंसा करते है और न ही हम लोगो में फूट डालत है। अपितु वेदमन्त्रों के अनुसार आचरण करते है। अर्थात् इस संसार में तुच्छ साथियों से भी मिलकर सब ओर से उद्योग करते है। कहने का भाव है कि किसी में भी फूट न डालते हुए, किसी प्राणी का वध न करते हुए प्राणी मात्र के प्रति प्रेमभाव रखना ही धर्म का मूलसार है। देव आगे कहता है–

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथापूर्वे संजानानामुपासते।।[12]

वेद कहता है हे मनुष्यों तुम सब परस्पर एक विचार से मिलकर रहो। परस्पर प्रेम से वार्तालाप करों। तुम लोगों का मन समान होकर ज्ञान प्राप्त करे। जिस प्रकार पहले से लोग एकमत होकर ज्ञान सम्पादन करते हुए सेवनीय ईश्वर की उत्तम प्रकार से उपासना करते रहे है, उसी प्रकार तुम भी एकमत होकर अपना सांसारिक कार्य करों अर्थात् संगठित होकर राष्ट्रसेवा करो।

इस प्रकार सार रूप में कहा जा सकता है कि वेद प्रतिपादित मानव धर्म में मनुष्य मात्र के शिशु, बच्चे, बालक, बालिका ए जैसे प्योर है। चाहे वे काले हों या गोरे हों, पीले हो या लाला हो, श्वेत हो या गुलाबी हो। किसी देश के मानव को किसी दूसरे देश के मानव पर शासन करने का अधिकार नहीं है। मानव धर्म किसी एक देश के मानवों को यह अधिकार नहीं देता है कि वे किसी दूसरे देश के मानवों की स्वतंत्रता का अपहरण करे और उनकी भूमि, सम्पत्ति व नारी का बलात् उपयोग करे।

वेदानुकूल मानवधर्म मनुष्य मात्र को मनुष्य मात्र की सेवा का पूर्ण अधिकार प्रदान करता है। वैदिक धर्म यह आज्ञा देता है कि एक देश के मानव दूसरे देश के मानवों के उत्थान में अपना सर्वस्व समर्पित कर दे, एक देश के मानव निःस्वार्थ भाव से दूसरे देश के मानवों को सुशिक्षित, सभ्य, सुशील और सदाचारी बनाये।

वेद एवं मनु दोनों के अनुसार मानवता अथवा मानव धर्म के प्रेमी उदार मानव उठे और परस्पर सहयोग स्थापना करके योजनाबद्ध रीति से संकोच की दीवारों को तोड़कर मानव–मानव का निर्वाद व सार्वभौम सम्बन्ध स्थापित कराये। संकुचित हदय और कुण्ठित मस्तिष्क को त्यागकर इस भूमण्डल के समस्त मानवों को उदाराशय बनना चाहिए। बिना उदार बने भूमण्डल पर स्वर्गसुख नहीं लाया जा सकता। इसलिए घृणा, हिंसा आदि दुर्गणों को सर्वथा त्यागकर स्नेह, सेवा, सदाचार आदि सदगुणों को धारण करने की प्रेरणा वेद एवं मनुस्मृति में दी गई है।

[11] ऋग्वेद– 10.134.7
[12] ऋग्वेद– 10.191.2

मानव धर्म के मानने वाले मानव परस्पर एक दूसरे से घृणा, घात–पात एवं ईर्ष्या–द्वेष त्यागकर परस्पर एक–दूसरे से आत्मवत् स्नेह एवं सुसेवा आदि करते रहे। क्योकि सभी प्राणी एक परमपिता की प्रजा है और अखण्डभूमि सब प्राणियों की निवासस्थली है। विश्वबन्धुत्व ही वेद एवं मनु की दृष्टि में धर्म के मूल तत्व है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, दाम्पत्यनिष्ठा और सर्वहित मानव–धर्म के मूल नियम है। धर्म के इन मूल तत्वों को जीवन में अपनाकर ही विश्वबन्धुत्व की भावना को सार्थक किया जा सकता हैं। विश्वबन्धुत्व के निर्माण की मूल इकाई व्यष्टि ही है। अतएवं हमने द्वितीय अध्याय में व्यष्टिमूलक धम्र के अन्तर्गत वेद एवं मनु की दृष्टि में व्यष्टिमूलक धर्म का स्वरूप, इहलौकिक धर्म, एवं पारलौकिक धर्म जैसे विषयों को विवेच्य विषय बनाया है।

हमारे ऋषियों–महर्षियों ने वेद की आज्ञानुसार धर्म को बहुत बड़ा महत्व दिया है व अर्थ, काम व मोक्ष को उसी के अधीन रखा है। वेद में मोक्ष, अर्थ व काम का सामंजस्य करते हुए उपदेश दिया गया है–

वेदाहमेतं पुरूषं महान्तमादित्यवर्ण तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेडयनाय।।[13]

जो अन्धकार–अज्ञान का नाश करने वाला, प्रकाशस्वरूप सृष्टिकर्ता परमेश्वर है उसी के जानने से मोक्ष मिलता है और दूसरा मार्ग नहीं है। इस समस्त जगत् में वह प्रत्येक स्थान पर उपस्थित है, इसलिए उसने सबको देकर जो तुम्हारे लिए निश्चित किया है उस पर निर्वाह करों। दूसरों के स्वत्व को मत लो। सारी आयु इसी प्रकार कर्म करते हुए जीन की इच्छा करोगे तो निश्चय ही मोक्ष हो जायेगा।

निष्कर्ष–

वर्तमान मे समाज में देखा जाता है कि जो धर्म के आडम्बरों में फंस कर मनुष्य दिशाहीन तथा दृष्टिहीन और बुद्धिहीन होता जा रहा है धम्र की आड में धर्म का दम्भ भरने वाले कुछ पाखण्डी लोगो का जीवन बर्बाद कर देते है। हिन्दू मुसलमान आदि धर्म के अनुयायी आपस में झगडे के कारण खून खराबा करवा करके अनेक लोगोग की जान गवा देते है। राष्ट्र के बटवारे तक करवा देते है इसलिए हमें इस धर्म को अच्छी तरह जानकर समाज राष्ट्र में वसुधैव कुटुम्बकम् के विचार का धारण करके हमें जगत् कल्याण करना चाहिये।

****

[13] यजुर्वेद– 31.18